रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष-71, अंक : 15, 17/20 जुलाई 2014 तदनुसार 5 श्रावण सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

ध्यानियों को महान प्रकाश मिलता है

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरू ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः।।

ऋ 7/90/4

शब्दार्थ- उच्छन्नुषसः= प्रकाश का विस्तार करने वाले **सुदिनाः**= उत्तम दिनों वाले **अरिप्राः**= निर्दोष **दीध्यानाः**= निरन्तर ध्यान करने वाले मनुष्य **उरू** = विशाल **ज्योतिः**= प्रकाश को **विविदुः**= प्राप्त करते हैं। **उशिजः**= कमनीय कामनाओं वाले **गव्यम्**= इन्द्रिय सम्बन्धी **ऊर्वम्**= विशाल बल को **चित्**= भी **वि+वव्रु**= विशेष रूप से वरण करते हैं **तेषाम्**= उनके **प्रदिवः**+ **अनु**= ज्ञान प्रकाश के अनुकूल **आपः**= जल **सस्रुः**= बहने लगते हैं।

व्याख्या- सब विषयों का आकार होते हुये भी वेद मुख्यतया ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करता है। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है।

सर्वेषां वेदानां मुख्यं तात्पर्यं ब्रह्मण्येवास्ति।
क्वचित्साक्षात्क्वचिच्च परम्परया,
न कस्मिंश्चिदपि मन्त्रे ईश्वरार्थत्यागो अस्ति।

अर्थात सभी वेदों का मुख्य तात्पर्य ब्रह्म में ही हैं, कहीं साक्षात्, कहीं परम्परा से, किसी भी मंत्र में ईश्वर-अर्थ का त्याग नहीं है।

भाव यह है कि कोई मंत्र यदि ऐसा प्रतीत हो जिसमें परमात्मा से अतिरिक्त का वर्णन हो, वहां भी परमात्मा का अधिष्ठाता रूप से या स्रष्टा आदि के रूप में वर्णन समझना चाहिये। वैसे वेद ब्रह्मविद्या का ही मुख्य रूप से वर्णन करता है। जीव, प्रकृति, ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान करा के प्रकृतिपाश से छुड़ा कर ब्रह्मसाक्षात् कराना ब्रह्मविद्या का काम है। ज्ञान का प्रधान साधन ध्यान है, उस ध्यान का बयान इस मंत्र में है-

उरू ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः= निरन्तर ध्यान करने वाले विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं। ध्यान का एक सामान्य अर्थ है विचार करना। प्रत्येक पदार्थ के गुण-दोषों का विवेचन विचार है। अमुक पदार्थ उपादेय=ग्रहण करने योग्य और अमुक हेय=त्यागने योग्य है, इस प्रकार के विवेक को विचार कहते हैं। इस प्रकार से हेय-उपादेय का विवेक करके हेय को त्याग कर उपादेय को ग्रहण करके आत्मसात करने का नाम ध्यान है, अर्थात् ऐसी अवस्था जिसमें ध्येय वस्तु पर चिरकाल एक अटूट विचारधारा निर्बाधरूप से बनी रहे, उसको ध्यान कहते हैं। इस ध्यान का फल विशाल प्रकाश बतलाया है। अनुभवी जन इसका समर्थन करते हैं। ध्यानियों की थोड़ी सी पहचान बताई है- वे सुदिन होते हैं। उनकी दिनचर्या बड़ी सधी हुई है, नियमित होती है। वे अरिप्र होते हैं। साधारणतया दस प्रकार के पाप होते हैं। जैसा कि वात्स्यायन मुनिजी ने न्यायभाष्य में लिखा है-

शरीरेण प्रवर्त्तमानः हिंसास्तेयप्रतिनिषिद्धमैथुनान्याचरति,
वाचाऽनृतपरुषसूचनासंबद्धानि,
मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति,
सेयं प्रवृत्तिरधर्माय। न्यायभाष्य 1/1/2

शरीर से प्रवृत्त होता हुआ मनुष्य हिंसा, चोरी और निषिद्ध मैथुन करता है। वाणी से मिथ्या, कठोर वचन, चुगली और असम्बद्ध प्रलाप करता है, मन से दूसरों से द्रोह, दूसरों से धन-हरण करने की इच्छा और नास्तिकता। यह प्रवृत्ति अधर्म का, पान का हेतु होती है।

ध्यानीजन इन पापों से रहित होते हैं। इस बात को अगले मंत्र के पूर्वार्द्ध में बहुत स्पष्ट करके कहा है-

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति।

ऋ. 7/90/5

वे सच्चे मन से ध्यान करते हुये, अपने सच्चे ज्ञानकर्म से युक्त हुये निर्वाह करते हैं, अर्थात् उनके ज्ञान, कर्म तथा मन में कोई खोट नहीं होता।

ध्यान का साधन भी बतला दिया कि वह मन से किया जाता है। उनके शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक व्यवहार में किसी प्रकार का असत्य नहीं होता, अतः उनके निष्पाप होने में संदेह किसे हो सकता है?

स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति में एक और संकेत भी है कि उनका कर्म, अर्थात् आहार व्यवहार युक्तियुक्त होता है। ध्यानी कर्महीन नहीं होते, वरन् वे **स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति** अपने कर्म से युक्त हुये निर्वाह करते हैं। उन्हें ज्ञात है कि **नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्** कोई भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता, अतः वे अपने कर्त्तव्य कर्म से सदा युक्त रहते हैं। ध्यानियों के अरिप्र होने का हेतु भी इस मंत्र में बता दिया गया है, अतः **उरू ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः** ध्यान करते हुये वे विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं। रिप्र=दोष=पाप अंधकार में होता है। प्रकाश में अंधे या असावधान को ठोकर लग सकती है। नेत्रवाले तथा सावधान को ठोकर लगना संभव नहीं। ध्यानियों का ध्यानानुष्ठान उनकी सावधानता की सूचना देता है, अतः प्रकाश प्राप्त कर वे पाप से निरवकाश हो जाते हैं। परिच्छिन्न जीव का स्वभाव है गति करना, इस नैसर्गिक नियम को जानकर वे ध्यानी भी गति करने में विवश हैं, अतः वे ध्यान से प्राप्त ज्योति के प्रसार के लिये यत्न करते हैं। ज्ञान-ज्योति प्रसार करने से उनका ज्ञानालोक उत्तरोत्तर बढ़ता है और इस प्रकार उनके रिप्रों का संहार होता है। योग के द्वारा वे अपनी इन्द्रियशक्ति बढ़ा लेते हैं। उनके तप के प्रभाव से अध्यात्म जल की शान्त धाराएं बहने लगती हैं और वे उनके रहे-सहे दोषों को भी बहा ले जाती है। ऋग्वेद 10/9/8 में इस अध्यात्मजल की महिमा ऐसी ही कही है।

इदमापः प्रः वहत यत्किंच दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वां शेप उतानृतम।।

हे जलो। यह बहा ले जाओ जो कुछ मुझ में दुरित दुरवस्था:दुर्गति=बुराई है, अथवा जो मैंने किसी से द्रोह किया है, या गाली दी है, अथवा झूठ बोला है। नदी-नाले वाले जल में यह बल कहां? वह तो अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति शरीर की शुद्धि कर सकता है। आओ, इस जल में जी भर कर नहाओ।

-स्वाध्याय संदोह से साभार

ईश्वर, वेद, महर्षि दयानन्द और मूर्तिपूजा

-ले० मनमोहन कुमार आर्य 196 चक्खूवाला-2 देहरादून

(गतांक से आगे)

धर्म व संस्कृति दांव पर थी। महर्षि दयानन्द की विचारधारा, आर्य समाज के अनुयायियों व देश के बलिदानियों जिनमें श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, अन्य क्रान्तिकारी, राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां, शहीद भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव आदि अगणित लोग थे, उन्होंने अपने जीवन व प्राण देकर आजादी को प्राप्त किया है। महात्मा गांधी जी का भी आजादी के आन्दोलन में मुख्य योगदान रहा है परन्तु हम समझते हैं कि जो व्यक्ति अपने प्राणों को बलिदान करता है उसका स्थान भी महत्वपूर्ण होता है। हमारा कहना मात्र यह है कि यदि ईश्वर ने रावण व कंस को मारने के लिए राम व कृष्ण के रूप में अवतार लिया तो अंग्रेजों को जिन्होंने हमारी धर्म, संस्कृति, भाषा, वेशभूषा व स्वत्व को समाप्त करने का उचित व अनुचित तरीके अपना कर उसे समाप्त व नष्ट करना चाहा व किया, तब तो ईश्वर को अवतार लेने में देर नहीं करनी चाहिये थी। परन्तु हमें लगता है कि तब हमारे पौराणिक बन्धुओं का ईश्वर या तो भूल गया था या उसकी अंग्रेजों से उनके अनुचित कार्यों में सहमति रही होगी। हमारा मानना है कि आजादी के आन्दोलन में सर्वाधिक योगदान महर्षि दयानन्द की विचारधारा, आर्य समाज के अनुयायियों की सक्रिय भूमिका और हमारे क्रान्तिकारियों का योगदान मुख्य था। नरम दल के नाम से जाने जाने वाले नेताओं व आन्दोलन का प्रभाव भी अवश्य था, परन्तु इस आजादी की विचारधारा को प्रेरणा व जन्म महर्षि दयानन्द के विचारों से प्राप्त हुआ था। अतः अवतारवाद की कल्पना मिथ्या सिद्ध होती है। हम चाहते हैं कि पाठक इस विषय को विस्तृत रूप से जानने के लिए महर्षि दयानन्द व आर्य विद्वानों के ग्रन्थों का अनुशीलन करें। हम यह भी अनुभव करते हैं कि हम जिन महापुरूषों की मूर्तियां बनाकर पूजा करते हैं, चाहे वह हमारे देश में हो व अन्य देशों में, उनके चित्र व आकृति यथार्थ न होकर हमारी कल्पनाओं पर आधारित हैं, इसका भी हमें ध्यान रखना है।

महर्षि दयानन्द के पिता कट्टर पौराणिक व शिवभक्त थे। महर्षि दयानन्द ने भी बचपन में मूर्तिपूजा की और शिवरात्रि के दिन शिव की मूर्ति-शिवलिंग पर चूहों को उछलते-कूदते देखकर उन्हें मूर्तिपूजा में अश्रद्धा व अविश्वास हो गया था। बाद में योग व वेदादि आर्ष ग्रन्थों के उनके अध्ययन से यह प्रमाणित हुआ कि मूर्तिपूजा अवैदिक, अनावश्यक, अनुचित व अधर्म है। हम मूर्तिपूजा की निरसारता की एक मनोरंजक घटना प्रस्तुत करते हैं। किसी दूर स्थान से एक ग्रामीण अनपढ़ व्यक्ति सोमनाथ मन्दिर में भगवान शिव के दर्शन के लिए आया। मन्दिर में उस दिन अधिक भीड़ थी। यह व्यक्ति मन्दिर के एक कोने में खड़ा दर्शन की प्रतीक्षा कर रहा था। पुजारी की दृष्टि इस व्यक्ति पर पड़ी तो उसने डांटते हुए उसे बाहर जाने को कहा। वह भोला व्यक्ति बोला कि 'मैं बहुत दूर से आया हूं। मुझे कुछ देर खड़ा रहने दीजिए, शायद् भगवान दर्शन दे दें।' इन शब्दों को सुनकर पण्डित जी नाराज होकर बोले कि मेरी कई पीढ़िया इस मन्दिर में पूजा करते हुए बीत गईं हैं। आज तक तो किसी को दर्शन दिए नहीं, तुझे कहां से दर्शन हो जायेगें। यह घटना हमने टंकारा में स्वामी जगदीश्वरानन्द के श्रीमुख से लगभग 8-9 वर्ष पूर्व सुनी थी जो मूर्तिपूजा का सटीक चित्रण करती है।

आजकल देश में मूर्तिपूजा को लेकर काफी चर्चा चल रही है। हमारा ज्ञान बताता है कि मूर्तिपूजा किसी भी रूप में उचित नहीं है। केवल योग की विधि से ही उपासना करनी चाहिये। वह सरल है, कहीं आना जाना नहीं है। घर में रहते हुए कुछ देर ध्यानावस्थित होकर ईश्वर का ध्यान करना ही ईश्वरोपासना है। कुछ स्वाध्याय करने से व दृढ़ धारणा करने से लाभ होता है। संकल्प-पूर्वक कोई भी साध्य कार्य किया जाये तो वह सफल होता है। महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में इसे करके दिखाया और आज उनके कोटिशः अनुयायी देश-विदेश में योग की रीति से ईश्वर के गुणों व कार्यों का ध्यान कर उसकी उपासना करते हैं। मूर्तिपूजा आस्था से जुड़ा प्रश्न नहीं है अपितु आस्था का सही अर्थ न जानने के कारण ऐसा कहा जाता है। पूर्ण सत्य में निष्ठा को आस्था कहते हैं। यहां सत्य नहीं अपितु अन्धविश्वास है, अतः मूर्तिपूजा को आस्था से जोड़ना उचित नहीं। जहां तक मूतिपूजकों का यह तर्क कि किसी विशेष दिवंगत व्यक्ति की मूर्तिपूजा से उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं तो वह तो उस मूर्ति की पूजा न करने वाले, योगियों, आर्य समाजियों, नास्तिकों, ईसाईयों, मुसलमानों, बौद्धों, जैनियों व सिक्खों के मनोरथ भी पूरे हो रहे हैं। मनोरथों का पूरा होना मूर्तिपूजा के कारण से नहीं होता अपितु हमारे पुरूषार्थ व प्रारब्ध से होता है जिसे सर्वव्यापक व निराकार ईश्वर हमें प्राप्त कराता है। अतः ईश्वर व मूर्ति के स्वरूप को जानकर मूर्तिपूजा को छोड़ना धर्म है। मूर्तिपूजा पर स्थिर रहना व सत्य से आंखें मूंदे रहना अधर्म है। यह ऐसा ही है कि सच्चे ईश्वर को न मानकर उसकी काल्पनिक कृति को मानना। जैसे जीवित माता-पिता के स्थान पर उनके चित्र व मूर्ति को पूजना व जीवित माता-पिता की उपेक्षा करना। ऐसा ही कृत्य यह मूर्तिपूजा है जिससे प्रारब्ध बिगड़ कर दीर्घकाल में हानि होती है। ईश्वर सभी देशवासियों को सद्बुद्धि दें जिससे हम अन्धविश्वासों से बच सकें और सच्चे ईश्वर की वेद विधान से उपासना करें।

निःशुल्क हड्डी जोड़ दर्द निवारण शिविर सम्पन्न

आर्य समाज हिरणमगरी, उदयपुर द्वारा आयोजित निःशुल्क हड्डियों की बी एम डी जांच एवं सभी प्रकार के जोड़ों के दर्द की जानकारी निदान एवं उपचार सम्बन्धित सलाह डॉ. राहुल खन्ना ने दी। जोहनसन एण्ड जोहनसन कम्पनी के श्री राकेश चौधरी एवं श्री देवेन्द्र कुमार ने बी.एम.डी. जाचें सम्पादित की। फिजियोथेरेपिस्ट श्री बीरेन्द्र कुमार ने जोड़ दर्द निवारणार्थ सम्बन्धी कसरतों की क्रियात्मक जानकारी व सलाह दी। इस शिविर में 196 महिला-पुरूष लाभान्वित हुये।

प्रारम्भ में डॉ. खन्ना ने दृश्य-श्रव्य माध्यम से ओस्टियोपोरसिस पर जानकारी दी। रोगियों के रोगों सम्बन्धित शंकाओं का भी समाधान किया गया। समाज प्रधान श्री भंवर लाल ने स्वागत किया एवं शिविर संयोजक डा. तापड़िया ने शिविर की जानकारी देते हुये डा. खन्ना आदि का परिचय दिया। धन्यवाद की रस्म आर्य समाज के मंत्री श्रीमती ललिता मेहरा ने अदा की। कार्यक्रम संचालन श्री भूपेन्द्र शर्मा ने किया। प्रातः पं. रामदयाल के पौराहित में देव यज्ञ सम्पन्न हुआ।

-रामदयाल मेहरा प्रचार मंत्री

सम्पादकीय......

गुरू पूर्णिमा पर विशेष-

गुरू दक्षिणा में समर्पित जीवन

प्राचीन भारत में गुरू शिष्य सम्बन्ध की अद्‌भुत परम्परा रही है। आज का शिष्य विद्यालयों में फीस देता है और शिक्षा ग्रहण करता है, परन्तु भारत की प्राचीन गुरूकुल पद्धति में शिष्य से कोई फीस नहीं ली जाती थी। भिक्षा द्वारा अन्नादि लाकर दैनिक आवश्यकताओं को पूरा किया जाता था। शिक्षा समाप्ति पर अपने सामर्थ्य के आधार पर और गुरू की आवश्यकतानुसार स्वयं ही निर्णय लेकर गुरू के चरणों में अपनी श्रद्धा के अनुसार कोई वस्तु अर्पण करते थे। उसे गुरू दक्षिणा के रूप में जाना जाता था।

इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए स्वामी दयानन्द ने अपने गुरू स्वामी विरजानन्द को दक्षिणा देने का निश्चय किया। गुरू दक्षिणा के रूप में दी जाने वाली वस्तु द्वारा गुरू की प्रसन्नता की इच्छा शिष्य के हृदय में हुआ करती है। स्वामी दयानन्द के पास कोई पार्थिव सम्पत्ति तो थी नहीं। अपनी दैनिक आवश्यकता के लिए वे स्वयं दूसरों के उपर निर्भर थे। किसी तरह भिक्षा के रूप में स्वामी विरजानन्द की प्रिय वस्तु लौंग एक थाली में सजाकर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से आप्लावित होकर, बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द ने उसे गुरू चरणों में अर्पित किया। लौंग की सुगन्ध कमरे को सुगन्धित कर रही थी। गुरू विरजानन्द प्रज्ञाचक्षु थे परन्तु सुगन्ध से पहचान लिया और दयानन्द से बोले- वत्स दयानन्द! क्या लाए हो? स्वामी दयानन्द ने निश्छल आनन्द से मुदित होकर कहा-गुरूजी, थोड़ी सी लौंग है। इस पर गुरू विरजानन्द जी ने कुछ पल रूककर गम्भीर भाव से कहा-दयानन्द मैं तुम्हारी गुरू भक्ति और श्रद्धा को समझता हूं परन्तु मैं तुमसे कुछ और चाहता हूं। गुरू के ऐसा कहने पर स्वामी दयानन्द की बड़ी विचित्र अवस्था थी। गुरू को प्रसन्न करने के लिए बड़ी मुश्किल से कुछ लौंग माँगकर लाया था परन्तु गुरूजी मुझसे कौन सी चीज चाहते हैं। इस कल्पना से कि गुरूजी कौन सी वस्तु मांग लेंगे, स्वामी दयानन्द अपने शारीरिक सामर्थ्य, बौद्धिक प्रतिभा और व्यवहारिक दक्षता के लिए अपने आपको दृढ़ता धारण करने का प्रयास कर रहे थे। शिष्य दयानन्द बड़ी श्रद्धा के साथ गुरू विरजानन्द जी के सामने नतमस्तक होकर निवेदन करते हैं कि गुरूजी आप आदेश दीजिए मैं अपना जीवन अर्पण करके भी उसे पूरा करने का प्रयास करूंगा।

स्वामी दयानन्द के निवेदन पर गुरू विरजानन्द अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं-देखो दयानन्द! भारत ही नहीं, विश्व भर का मानव अज्ञान अविद्या के अन्धकार में डूबकर बहुत कष्ट को प्राप्त हो रहे हैं, उसे सुखी देखना चाहता हूं। वे अपनी कुरीतियों, कुप्रथाओं की बेड़ियां तोड़कर ज्ञान और विद्या के प्रकाश में प्रकाशित हों। वे सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य, सुख-दुख, राग-द्वेष के प्रति विवेक ज्ञान प्राप्त कर लें और नित्यानन्द में आनन्दित रहें। आज संसार सत्य विद्या का प्रचार करने वाले वेद ज्ञान को भूल चुका है, मत-मतान्तरों, सम्प्रदाय और एक ईश्वर की पूजा के स्थान पर अपने-अपने ईश्वर बना बैठा है, मूर्तिपूजा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। संसार के मानव मात्र को वेद ज्ञान रूपी सूर्य की किरणों का प्रकाश तुम्हीं दे सकते हो। मानव की उन्नति के साथ ही जीव मात्र की स्थावर जंगम की उन्नति आश्रित है। मैं चाहता हूं कि जो विद्या आज तक तुमने अर्जित की है, उसका प्रसार संसार भर में जीवमात्र के कल्याण के लिए करो। इतना कहकर गुरू विरजानन्द चुप हो गए।

गुरू विरजानन्द की वाणी जैसे-जैसे आगे बढ़ती जा रही थी स्वामी दयानन्द के भाव बदलते जा रहे थे, वे जिस परीक्षा के लिए अपने आपको तैयार कर रहे थे, अब उसकी आवश्यकता नहीं थी। गुरू विरजानन्द को अपनी प्रदत्त विद्या के लुप्त हो जाने का भय तथा चिन्ता व्याप्त थी। कितने ही शिष्यों को उन्होंने पढाया? कोई शिष्य दयानन्द के समान मेधावी, पूर्ण शुद्ध ब्रह्मचारी एवं परहित चिन्ता व्यग्र नहीं मिला। इसे सच्चे शिव की खोज थी, वह इसने पा लिया है। समाधि में उस नित्य, शुद्ध, पवित्र, आनन्दमय, ज्ञान स्वरूप के सानिध्य में परम पवित्र ज्ञान का प्रसाद भी पा चुका है। वह संसारिक चिन्ताओं से विरक्त, स्थिर समाधि में आनन्दमग्न हो गया तो इस सत्य विद्या का प्रकाश इस संसार में कौन फैलाएगा? क्या यह दीपक अपने प्रकाश से स्वयं ही प्रकाशित रहेगा? संसार के दु:खी जीवमात्र को इस अन्धकार से कौन निकालेगा? अपनी आशाओं को मूर्तरूप देने में समर्थ, इस दयानन्द को वेद सूर्य का प्रकाश करने में लगाने का निश्चय कर गुरू जी ने दक्षिणा के रूप में प्रस्ताव दिया।

स्वामी दयानन्द पुलकित होकर गुरू के चरणों में गिर पड़े। गुरू उससे वही संकल्प करा रहे थे जिसका उन्होंने स्वयं संकल्प लिया था। मानो स्वामी दयानन्द प्रसन्न होकर जैसे इन पंक्तियों में कह रहे हो-गुरूदेव प्रतिज्ञा है मेरी पूरी करके दिखला दूंगा, वैदिक धर्म की बलिवेदी पर जीवन भेंट चढा दूंगा। तब गुरू विरजानन्द ने गद्-गद् हो कर आशीर्वाद दिया।

स्वामी दयानन्द ने गुरू दक्षिणा को चुकाते-चुकाते, सत्य विद्या का प्रचार-प्रसार करने, सत्य को ग्रहण और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत, प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार व्यवहार करने, एक ही ईश्वर के सत्य स्वरूप की स्थापना करने, अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रहकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने, मन-वचन-कर्म से एकनिष्ठ सत्यवादी दयानन्द ने अनेकों कष्टों को सहा, विष पान किया, परन्तु कभी भी डगमगाया नहीं। संसार को वेद का सत्य ज्ञान दिया। वेदों के सत्यार्थ प्रकाश के कारण अनुपमेय विद्या बल बुद्धि से प्रदीप्त होकर महर्षि कहलाया।

गुरू पूर्णिमा के अवसर पर इस महान् गुरू के महान् शिष्य की अद्‌भुत दक्षिणा को अपने जीवन में धारण करके संसार भर के कल्याण की भावना को लेकर यदि हम कार्य करें तो अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। आज फिर विरजानन्द जैसे गुरू और दयानन्द जैसे शिष्य की आवश्यकता है जो इस संसार में बढ़ रहे अन्धविश्वासों, कुरीतियों, बुराईयों को दूर कर सके।

-प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

शिक्षा तथा अनुशासन

-ले० डा. रविदत्त शर्मा एम.ए. (वेद) आर्य समाज शामली

सम्प्रति अनुशासनहीनता एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। पृथ्वी का वासी अपने आपको किसी नियम के बन्धन में नहीं बाँधना चाहता। मानव-मस्तिष्क की यह उन्मुक्त उड़ान ही विनाश का कारण है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से तथा एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से छोटी-छोटी बातों पर टकराव होता है। इस प्रवृत्ति ने ही असहिष्णुता को जन्म दिया। इस दोष के कारण समाज की परिभाषा भी विकृत हो गयी है। कोई भी ऐसा कारगर उपाय नहीं सूझता जिससे इस समस्या का समाधान किया जा सके। अनुशासन का आधार शिक्षा है। शिक्षा मनुष्य के जीवन को पूर्णरूपेण प्रभावित करती है। शिक्षा के दो रूप हमारे सामने आते हैं; एक प्राचीन तथा दूसरा नवीन। दोनों की अलग-अलग पद्धतियाँ हैं। प्राचीन पद्धति ऋषियों की धरोहर है। ऋषियों ने ऐसा मार्गदर्शन किया कि प्रत्येक क्षेत्र में पूर्णता के दर्शन होते हैं। जीवन के भौतिक व आध्यत्मिक पक्ष सन्तुलित रहते हैं। सभी समस्याओं का समाधान मिलता है। ऋषि सूक्ष्म दृष्टि वाले होते हैं, अत: उन्होंने आत्मचिन्तन तथा आत्म-कल्याण की ओर अग्रसारित किया। पाठ्यक्रम ऐसा विचित्र कि जिस से लोक-परलोक का सुधार हो जाए। विशेषता यह थी कि उन्होंने शिक्षा को धर्म से जोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन स्वत: ही धार्मिक बन गया। धार्मिक वातावरण में अतृप्ति-भ्रान्ति आदि का लोप हो जाता है। ऐसी शिक्षा का उद्देश्य मानव निर्माण होता है, अत: मनुष्य के सभी दोष दूर हो जाते हैं और एक साधारण मनुष्य देवता बन जाता है। अब नवीन शिक्षा पद्धति पर दृष्टिपात करते हैं। इससे वही सब कुछ होता है जो हम वर्तमान में देख रहे हैं। कहीं भी सन्तोष का अनुभव नहीं होता। केवल अर्थसंग्रह ही जीवन की परिभाषा बन कर रह गयी है, परन्तु यह बड़ी अस्वाभाविकता है कि धन जितना बढ़ता जाता है, लिप्सा उससे कई गुनी हो जाती है। कितना भी धनार्जन हो जाए, परन्तु मनुष्य यह मानने को तैयार नहीं कि उसे अब आवश्यकता नहीं है। यह शिक्षा जीवन को इतना असन्तुलित व अमर्यादित बना देती है कि मनुष्य भयंकर कुकृत्य करने में भी संकोच नहीं करता। सभी सम्बन्धों का आधार आर्थिक ढाँचा बना हुआ है, जिसमें स्नेह-वात्सल्य-त्याग-अनुकम्पा आदि का कोई स्थान नहीं। इस शिक्षा पद्धति को धर्म से सर्वथा अछूता रखा गया है, यही इसकी विशेषता है। इस पद्धति में विनम्रता नाम की कोई चीज नहीं।

आज के संकीर्ण वातावरण में सभी चाहते हैं कि इन परेशानियों से छुटकारा मिले परन्तु शास्त्रों की बातों का आदेश मानने के लिये कोई तैयार नहीं। जिस पढ़ाई-लिखाई में धर्म और आचरण का कोई स्थान नहीं तो अच्छे-बुरे का ज्ञान कैसे होगा ? स्वार्थ पूर्ति जैसे भी हो उसी उपाय को अच्छा समझा जाता है। मनुष्य को सदैव शिक्षा की आवश्यकता है। वेदों व शास्त्रों से उत्तम शिक्षा मिलती है। मनुष्य ज्ञान की दृष्टि से कभी भी अपने को पूर्ण न समझे, जहाँ भी सन्देह हो वहाँ शास्त्रों को शरण लेनी चाहिये। ऐसी बहुत-सी सूक्तियाँ उपलब्ध हैं-

इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु = परमात्मा हमें शिक्षा देवे।

शिक्षा स्तोतृभ्य: = स्तोतागणों को शिक्षा दो।

मित्रायुवो न मूर्पतिं

उपशिक्षन्ति यज्ञैः = मित्रता चाहने वाले तथा मध्यस्थता की इच्छा वाले, यज्ञों के द्वारा नगर के स्वामी के पास जा कर शिक्षा देते हैं।

अध्ययन-अध्यापन के प्रेरक आचार्यगण अपने अन्त:वासी का मार्गदर्शन करते हैं। यह ही वास्तविक शिक्षा है। इस सम्बन्ध में हमारी संस्कृति की झलक तैत्तिरीय उपनिषद् में मिलती है-

'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिन-मनुशास्ति। सत्यं वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियधनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी:। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदित-व्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।'

-तैत्तिरीय उपनिषद् वल्ली १. अनुवाक ११

'वेद का अध्ययन कराकर आचार्य अपने आश्रम में रहने वाले विद्यार्थी को शिक्षा देता है-सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में प्रमाद न करो। आचार्य के लिये दक्षिणा के रूप में धन प्रदान कर (सन्तान) वंशपरम्परा को नष्ट मत होने दो। सत्य को मत त्यागो। धर्म का उल्लंघन न करो। शुभकर्मों में भूल मत करो। कल्याण के उपायों में लापरवाही न करो। वेदों के पढ़ने और पढ़ाने में भूल-चूक न करो। देव तथा पितृसम्बन्धी कार्यों को कभी न छोड़ो।'

ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी (अन्तेवासी) को इतना परिपक्व बना देना चाहिये कि वह गृहस्थ के भार को वहन करने में पूर्ण सक्षम हो। आत्म कल्याण, परोपकार, माता-पिता-अतिथि-विद्वान् का यथोचित सम्मान, वैदिक धर्म तथा संस्कृति का प्रचार-प्रसार, असहायों का सम्भरण, सत्याचरण तथा सद्व्यवहार आदि सभी प्रकार की शिक्षा छात्र के लिये अपेक्षित है। जीवन का मार्गदर्शन करने वाले शास्त्रों से भली-भाँति अवगत करा देना चाहिये। यह कार्य आचार्य का है। आचार्य उसे कहते हैं जो स्वयं आचारवान् हो और शिष्य को आचरण सिखा सके। पढ़ाने वाले को चरित्रवान् होना अनिवार्य है तभी तो वह आचरण की शिक्षा दे पायेगा। शिष्य भी विनम्र भाव से आचार्य की शिक्षा को ग्रहण करे और बड़ों के प्रति सम्मान की भावना रखता हो। आज का विद्यार्थी केवल परीक्षार्थी बन गया है क्योंकि उसे निर्धारित पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढ़ाकर छोड़ दिया जाता है। पाठ्य-पुस्तकें भी इस ढंग से पढ़ाई जाती हैं कि चुने हुए प्रश्नों के उत्तर तैयार करना ही छात्र का लक्ष्य हो जाता है। परीक्षा के पश्चात् स्वाध्याय व प्रवचन को सदैव के लिए तिलाञ्जलि दे दी जाती है। परिणाम यह होता है कि वह शास्त्रों से कोई लाभ नहीं उठाता। स्मरण रहे कि आयु जितनी आगे बढ़ती जाती है ज्ञान भी उतना ही अधिक अपेक्षित है अर्थात् आयु के साथ-साथ ज्ञान भी बढ़ता रहना चाहिये। स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति ही अपना ज्ञानवर्धन कर सकता है। 'शास्त्रं सर्वस्य लोचनम्' शास्त्र सबका नेत्र है। बिना शिक्षा तथा अनुशासन के कोई भी समाज ठीक प्रकार नहीं चल पायेगा। जिस समाज में सभी अशिक्षित तथा अनुशासनहीन हों तो उसका भगवान ही रक्षक है। शिक्षा तथा अनुशासन की शुद्ध परम्परा का निदर्शन एक ऋचा में मिलता है-

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्ट:।
एतद् वै भद्रमनुशासनस्योत स्त्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम्।।

-ऋ० १०.३२.७

'मार्ग से अनभिज्ञ अवश्य ही मार्ग से भिन्न पुरुष से पूछता है। वह ज्ञानी पुरुष से शिक्षित होकर उत्तम मार्ग को प्राप्त कर लेता है। गुरु के अनुशासन का यही कल्याणकारी परिणाम है कि अनुशासित पुरुष ज्ञान को प्रकाशित करने वाला, वाणियों की गति को पाता है। यह अनुशासन की महिमा है।'

शिक्षा और अनुशासन का शाश्वत सम्बन्ध है। शिक्षा देने वाला व्यक्ति ही अनुशासन सिखाने में सक्षम होता है। जो कोई भी अपने आप में कुछ कमी का अनुभव करे, वह उसे पूर्ण करने के लिये योग्य विद्वान् के पास जावे और जीवन के प्रकार को प्राप्त करे। इस प्रकार समस्या का समाधान सरलता से हो जाता है। विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे अधिक से अधिक शिक्षा प्रदान कर अनुशासन बनाये रखें। एक ऋचा में ऐसी ही झलक मिलती है कि ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् तुम को अनुकूल कहे, हित की बात कहे तथा मैं उससे अनुशासित होकर सुख को प्राप्त करूँ:

इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्।।

ऋ. ५.२.८

विद्वानों के द्वारा प्रयास करने पर भी जो लोग मनमाने ढंग से वर्तते हैं, किसी नियम को नहीं मानते तथा धर्माचरण से बहुत दूर हैं उनके लिये श्रुति में विधान है कि जो धन को सत्कार्य में नहीं लगाते, धन से विद्वानों तथा दीनजनों का भरण-पोषण नहीं करते उनके धन को विसरणशील बनाओ, सहायतार्थ वितरण करो। जो व्रतनियम आदि का पालन नहीं करते ; परमात्मा वेद तथा विद्वानों से द्वेष करते हैं और वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं उन्हें प्रकाश से वञ्चित कर दो, अन्धकार में धकेल दो अर्थात् आचरणहीन जनों की उपेक्षा करते रहो, उनका सम्मान नहीं करना-

विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां, ये भुञ्जते अपृणन्तो न उ क्थै:।
अप्रवतान्प्रसवे वातृधा-नान्ब्रह्मद्विष: सूर्याद्याव-यस्व।।
ऋ० ५.४२.८

समाज में जो व्यक्ति उच्छृंखल तथा उद्दण्ड हो, शिक्षा तथा अनुशासन का उल्लङ्घन करे तथा अन्यायपूर्वक भोगों को भोगे, किसी को सम्मान न दे तथा अपने कुत्सित आचरण से सबको दुखी करे; समाज से उसका बहिष्कार कर देना चाहिये। जैसे भी सम्भव हो सबको शिक्षा प्रदान कर अनुशासित बनाओ।

सत्यार्थ प्रकार्थ के सप्तम समुल्लास में कुछ प्रेरक प्रश्नोत्तर

-ले० खुशहाल चन्द्र आर्य एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड, कोलकत्ता

''सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास के कुछ प्रेरक प्रश्नोत्तर''

यह लेख मैंने सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने की इच्छा को जागृत करने की भावना से लिखा है। अधिकतर लोगों को सत्यार्थ प्रकाश की जानकारी तो है परन्तु उसको ऊँचे स्तर के ज्ञान की पुस्तक समझकर पढ़ते नहीं है, समझते है कि यह पुस्तक तो विद्वानों के मतलब की है। हमारा इससे क्या लेना-देना। इस लेख में जो प्रश्न तथा उनके उत्तर, ऐसी सरल व रोचक भाषा में किये गये है जिनको पढ़कर हर व्यक्ति के मन में सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न होगी और वह ''सत्यार्थ प्रकाश'' को जरूर पढ़ेगा, जिससे मानवता का बड़ा उपकार होगा और मुझे पूरा विश्वास है-कि यह लेख ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' बनाने में बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। प्रश्न-उत्तर इसी भाँति है:-

१. प्रश्नः-ईश्वर व्यापक है, वा किसी देश विशेष में रहता है?

उत्तरः-व्यापक है। क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, पूर्वज्ञ, सर्व नियन्ता, सब का सृष्टा, सब का धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता। अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का होना असम्भव है।

२. प्रश्नः-ईश्वर साकार है, वा निराकार ?

उत्तरः-निराकार। क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण-कर्म-स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्णा, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष छेदन, चेतन आदि से सहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित्त है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनाने वाला कोई दूसरा होना चाहिए। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप से आप ही अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता, किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

3. प्रश्नः-ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वा नहीं ?

उत्तरः-है ! परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान शब्द का अर्थ जानते हो, वैसा नहीं। किन्तु ''सर्व-शक्तिमान'' शब्द का सही अर्थ है कि ईश्वर अपने सब काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथा योग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है।

४. प्रश्नः-हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर जो चाहे सो करे, क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है।

उत्तरः-वह क्या चाहता है ? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता है और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान्, चोरी, व्यभिचारादि पाप-कर्म और दुःखी भी हो सकता है। जैसे ये काम ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से विरुद्ध है तो जो तुम्हारा कहना कि ''वह सब कुछ कर सकता है'' यह कभी नहीं घट सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान शब्द का अर्थ जो हमने कहा, वही ठीक है।

५. प्रश्नः-परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है, वा नहीं ?

उत्तरः-है।

६. प्रश्नः-ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं। जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाये। क्योंकि ''न्याय'' उसको कहते हैं कि जो कर्मों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख-दुःख पहुँचाना। और ''दया'' उसको कहते है जो अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़ देना।

उत्तरः-न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है। क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हों। वही दया कहलाती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना। और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया वह ठीक नहीं। क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो, उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम ''न्याय'' है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाये तो दया का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्त्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने में सहस्त्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है। यह दया किस प्रकार हो सकती है ? ''दया'' वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना। और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्त्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

७. प्रश्नः-फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए ? क्योंकि इन दोनों का अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है, इसलिये एक शब्द का रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं है।

उत्तरः-क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते ?

प्रश्नः-होते हैं।

उत्तरः-तो पुनः तुमको शंका क्यों हुई ?

प्रश्नः-संसार में सुनते हैं, इसलिये।

उत्तरः-संसार में तो सच्चा-झूठा दोनों सुनने में आता है, परन्तु उसका विचार से निश्चय करना अपना काम है। देखो ! ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखे हैं। इससे बिना दूसरी बड़ी दया कौन सी है ? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह ''दया'' और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन-छेदनादि यथावत् दण्ड ''न्याय'' कहलाता है। दोनों का एक ही प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् कर देना।

९. प्रश्नः-ईश्वर अवतार लेता है, या नहीं ?

उत्तरः-नहीं ! क्योंकि ''अज एक पाद्। सपर्य्यागाच्छुक्रमकायम्'' ये यजुर्वेद (३४/५३ और ४०।८) के वचन हैं। इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

१०. प्रश्नः-''यदा यदा हि धर्मस्य, तदान्मानं सृजाम्यहम्'' भ० गी०४।६

श्री कृष्ण जी कहते है कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तरः-यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। हाँ ! ऐसा हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा थे और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि ''परोपकाराय सतां विभूतयः'' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है, तथापि इससे श्री कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

११. प्रश्नः-ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है, वा नहीं ?

उत्तरः-नहीं ! क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे कोई राजा अपराधियों के अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक-अधिक बड़े-बड़े पाप करें, क्योंकि राजा तुम्हारा अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा हो जाये कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे। और जो अपराध नहीं करते। वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

कुछ उपनिषदों से

-डा. सुशील वर्मा गली मास्टर मूल चन्द शर्मा, फाजिल्का

महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदों की उत्पत्ति सृष्टि के प्रारम्भ से ही ईश्वर प्रदत्त स्वीकार करते हैं। तत्पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थ और फिर आरण्यक ग्रन्थ, अन्त में उपनिषद् ऋषिकृत। उपनिषद् शब्द उप + नि + सद् अर्थात् उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से अस्तित्व में आता है। इसका अर्थ हुआ-उपर = समीप, नि = निश्चयपूर्वक, सद = बैठना। अर्थात् तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु के समीप सविनय, एवं निष्ठापूर्वक बैठना। शंकराचार्य ने इसका अर्थ ब्रह्म विद्या कहा है। उनके अनुसार सद् धातु (षदलृ विशरणगत्यवसादनेषु) के तीन अर्थ है।

विशरण = नाश होना अर्थात् संसार की मूलभूत अविद्या का नाश। गति = पाना अथवा जानना-अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति अथवा उसका ज्ञान और तीसरे अवसादन = शिथिल होना जिससे मनुष्य के दु:ख अथवा बन्धन शिथिल होते हो। इन तीनों का समन्वय ही ब्रह्म विद्या का द्योतक है। वैसे तो उपनिषदों की संख्या 108 से लेकर 200 तक मानी जाती है। परन्तु आज ग्यारह उपनिषद् ही प्राप्य है। इनके नाम इस प्रकार है। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूकय, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर। वास्तव में उपनिषद् के ऋषियों का लक्ष्य किन्हीं दार्शनिक रहस्यों पर ऊहापोह न करके अपने हृदय की अनुभूति को प्रकट करना रहा है। उपनिषद् मानव को अपने अन्दर झांकने की अथवा अध्यात्म के प्रति अर्न्तमुख होने की प्रेरणा देते है।

उपनिषदों की आकर्षक एवं सरल शैली के अध्यात्म विद्या के गहनतम रहस्यों को उजागर कर भारत में ही नहीं अपितु विदेशियों को भी बहुत प्रभावित किया। दाराशिकोह जो कि शाहजहाँ का पुत्र एवं औरंगजेब का भाई था, उसने 50 उपनिषदों का फारसी में अनुवाद सिर्र-ए-अकबर (महान रहस्य) नामक पुस्तक में 1657 ई. में किया। उसका यह मानना है कि कुरान में ''किताबिम मकनुनिन'' (छिपी हुई किताब) का उल्लेख है और यह छिपी किताब उपनिषद् ही हैं। दाराशिकोह के फारसी अनुवाद से Anquetil de Perran नामक फ्रांसिसी विद्वान ने 1802 ई. फ्रेंच और लेटिन में आउपनेखत Oupnekhat नाम से अनुवाद किया। वास्तव में आउपनेखत-उपनिषद् का ही विकृत रूप है। लेटिन अनुवाद के आधार पर ही प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहार उपनिषदों के प्रति बहुत आकृष्ट हुआ। उसने उपनिषदों को ''मानवीय वैदुष्य की सर्वोत्तम कृति'' बताया। उसका कहना है इन उपनिषदों से मुझे अपने जीवन में अद्‌भुत शान्ति मिली है और मृत्यु के पश्चात भी मुझे ये शान्ति देती रहेंगी।''

उपनिषदों में दर्शन परस्पर विरोधी गुणों का समन्वय है। एक ओर ज्ञानमार्ग की उपयोगिता है तो दूसरी ओर कर्ममार्ग और भक्ति मार्ग की उपयोगिता एक और प्रवृत्तिमार्ग है तो दूसरी और निवृत्तिमार्ग। एक ओर सर्वंखल्विंद ब्रह्म है तो दूसरी ओर द्वैत एवं त्रैत सिद्धान्तों का प्रतिपादन। अत: उपनिषदों की विशेषता यही है कि विवादास्पद विषयों पर ये समन्वय प्रस्तुत करते हैं एकांगी दृष्टिकोण हमेशा ही हानिप्रद होता है अत: दोनों पक्षों के गुणों को ग्रहण करना चाहिए। ज्ञान और कर्म दोनों का समन्वय अभिष्ट है, एक भौतिक जगत के लिए तो दूसरा अध्यात्म के लिए।

वैसे तो समय-समय पर ज्ञाताओं एवं विद्वानों द्वारा उपनिषदों के विषयों में चर्चाएँ प्रस्तुत की जाती रही है। साधारणतया दो बड़े उपनिषद् छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक पर चर्चा कम ही की गई है तो मेरा प्रयास है कि मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से कुछ न कुछ इन उपनिषदों के विषयों पर अपनी बात करूँ। धन्य है ऋषि दयानन्द जिन्होंने सभी को शिक्षा प्राप्त करने की बात की और विशेष तौर पर नारियों के लिए। प्राचीन परम्परा में जहाँ उच्च कोटि के विद्वान हुए, वहीं विदुषियाँ भी किसी से कम नहीं थी। जहाँ ऋषियों ने मन्त्र साधना की वहीं ऋषिकाओं को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसी श्रृंखला में बृहदारण्यक में वर्णित याज्ञवल्कय एवं गार्गी का सम्वाद, जहाँ उनके वैदुष्य का परिचय देता है वहीं हमारा उपनिषद् की शिक्षाओं के प्रति ज्ञानवर्धन कराता है। बृहदारण्यक उपनिषद् शतपथ ब्राह्मण के 14 वें काण्ड का अन्तिम भाग है। यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित है। जहाँ तक याज्ञवल्कय गार्गी सम्वाद का सम्बन्ध है यह वार्ता तृतीय अध्याय के छठे ब्राह्मण एवं अष्टम ब्राह्मण से उद्धृत है। विदेहराज जनक ने बहु-दक्षिणा नामक यज्ञ किया जिसका उद्देश्य था कि सबसे अधिक विद्वान कौन है ? इसके लिए उन्होंने एक हजार गौएँ जिनके दोनों सीगों में दस दस तोला सोना जड़ा था सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ज्ञानी को देने के निश्चय से उन्हें हाँक ले जाने को कहा। सभी उपस्थित ब्राह्मण क्रोधित हो गए और ललकार कर कहने लगे कि यदि तुम अपने आप को उच्चकोटि के ब्रह्मज्ञाता समझते हो तो हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

जनक के पुरोहित अश्वल के आठ प्रश्न पूछने के बाद आर्तभाग ने अनेक प्रश्न किए। तत्पश्चात भुज्यु ने और फिर उषस्त एवं चाक्रायण का विवाद हुआ। याज्ञवल्कय तथा कहोल के विवाद के पश्चात वाचक्नवी गार्गी (वाचकुन की पुत्री) ने प्रश्न पूछने प्रारम्भ किए। हे याज्ञवल्कय। यह पृथिवी चारों और से जल में ओतप्रोत है तो फिर जल किस में ओतप्रोत है ? याज्ञवल्कय का उत्तर था वायु में। फिर आगे प्रश्न कि वायु किस में ओत प्रोत है-अन्तरिक्ष, लोकों में। अन्तरिक्ष लोक किस में-गन्धर्व लोकों में, नक्षत्र लोक किस में-देव लोको में, देवलोक किस में-इन्द्र लोक में। इन्द्र लोक किस में-प्रजापति लोकों में, प्रजापति लोक किस में-ब्रह्म लोकों में। तभी गार्गी ने प्रश्न किया कि जैसे कपड़े में ताना बाना होता है, तभी कपड़ा बुना जाता है, सूत्र में मनके पिरोए होते हैं तभी माला रह सकती है तो फिर ये प्रजापति के लोक किस तरह कपड़े अथवा माला की तरह पिरोए हैं अथवा ओत प्रोत हैं। याज्ञवल्कय ने उत्तर दिया ब्रह्म लोक में। तभी गार्गी ने फिर पूछा ब्रह्म लोक किस में ओत प्रोत है। याज्ञवल्कय बोले हे गार्गी, अतिप्रश्न मत पूछ, कहीं तेरा सिर न फिर जाए। ''माऽतिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपप्तद'' वह ब्रह्म देवता ऐसा है जिसके विषय में अति प्रश्न तो हो ही नहीं सकते। इस प्रकार गार्गी चुप हो कर बैठ गई।

इन प्रश्नों के विषय में चिन्तन किया जाए तो वास्तविक रूप में ये 33 देवताओं से सम्बन्धित है। 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, इन्द्र एवं प्रजापति कुल 33 देवता है। वैदिक साहित्य में अग्नि, पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, देवलोक, चन्द्र, नक्षत्र-आठ वसु है। इनमें अग्नि का वास पृथिवी में वायु का अन्तरिक्ष में, आदित्य का देवलोक (द्युलोक) में चन्द्र का नक्षत्र लोक में है। दस इन्द्रियाँ अर्थात् दस देव (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) तथा ग्यारहवाँ मन-रुद्र हैं। बारह माह बारह आदित्य है। गार्गी ने अग्नि के स्थान पर जल को रखा क्यों कि अग्नि इस प्रकार फैली नहीं पाई जाती जिस प्रकार जल चारों ओर फैला हुआ है। उन्होंने पृथिवी, जल, वायु, अन्तरिक्ष इस क्रम में प्रश्न किए है। इसी प्रकार गन्धर्व, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र का क्रम लिया है। ये तो आठ वसु है और इसी प्रकार 11 रुद्रों को देव, इन्द्र प्रजापति और ब्रह्म के सम्बन्ध में प्रश्न किए। क्योंकि इन्द्रियों को उपनिषद् में देव कहा जाता है। सारांश यह कि 33 के 33 देवता ब्रह्म में ही माला के मनकों की तरह पिरोए हुए हैं, इनमें से कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। गार्गी के पश्चात् उद्दालक का विवाद हुआ। एक बार फिर गार्गी ने कहा कि मेरे दो प्रश्न का उत्तर दें। गार्गी ने प्रश्न किया है याज्ञवल्कय। द्यु से जो उपर है, पृथिवी से जो नीचे है, द्यु और पृथिवी के बीच में जो है, जिसे भूत-भवत् भविष्यत् कहा जाता है वह सब किस में ओत प्रोत है। याज्ञवल्कय का इस के प्रति उत्तर था वह आकाश में ओत प्रोत है। एक प्रश्न के उत्तर के बाद इसने पूछा कि वह आकाश किस में ओत प्रोत है याज्ञवल्कय का उत्तर था कि हे गार्गी जिसमें आकाश ओत प्रोत है इसे ब्रह्मवेत्ता लोग 'अक्षर' कहते है। वह 'अक्षर'-अविनाशी तत्त्व-न स्थूल है, न अणु है न ह्रस्व है न दीर्घ है। न अंगारे की तरह लोहित है, न घी की तरह स्निग्ध। न छाया है, न तम है न वायु है न आकाश है। यह तल असंग है, अरस है, अगंध है, अचक्षु है, अश्रोत्र है, वाक रहित, मन रहित, तेज रहित, प्राण रहित, मुख रहित, मात्रा रहित। इस अविनाशी तत्त्व के न कुछ भीतर है, न बाहर है न वह किसी को खाता है, न कोई उसे खाता है।

इसी 'अक्षर' के शासन से सूत्र में बँधे, सूर्य चन्द्र अपने-अपने स्थानों में ठहरे हुए है। इसी शासन सूत्र में बँधे निमेष, मुहूर्त, रात्रि, अर्धमास, मास, ऋतु, सम्वत्सर ठहरे हुए है तो इस अक्षर को जानकर इस लोक से प्रयाण करता है वह ब्राह्मण है-ब्रह्मवेत्ता है। इस प्रकार गार्गी ने कहा कि इस ब्रह्मवक्ता को नमस्कार कर के छूट जाओ, तुम में से इसे कोई जीत न सकेगा। इस प्रकार यह कथा हमें 33 देवताओं के विषय में ज्ञान दे रही है।

संस्कारविहीन शिक्षा-बढ़ते अपराध

-नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' 602 जी एच 53 सै. 20 पंचकूला

देश में निरंतर बढ़ते अपराधों विशेषरूप से अपनी आधी आबादी पर हो रहे बलात्कार जैसे जघन्य अत्याचारों को देखते हुए इसके कारणों और दूरगामी समाधानों पर जब हम विचार करते हैं तो देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कमियां और दोष स्पष्ट दिखाई देते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश के नीति नियंताओं ने इस प्रचलित शिक्षा प्राणाली को चुन लिया। इस शिक्षा व्यवस्था को ब्रिटिश गुलामी के दिनों में लार्ड मैकाले द्वारा इस देश को सदा सर्वदा के लिए मानसिक रूप से गुलाम बनाए रखने के लिए लागू किया था। लार्ड मैकाले ने इस शिक्षा प्रणाली को ब्रिटिश साम्राज्य की नीवें मजबूत करने के उद्देश्य से इस सोच के साथ थोपा था कि हम इस देश की भावी पीढ़ी को उसकी संस्कृति की जड़ों से काट देंगे। परन्तु ना जाने क्यों किन कारणों से स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश के नीति नियंताओं ने गुलामी की मानसिकता की प्रतीक मैकाले की शिक्षा प्रणाली को अपनी भावी पीढ़ी के निर्माण के लिए अपना लिया गया जिसके दुष्परिणाम हम अपने समाज की वर्तमान अवस्था में भुगत रहे हैं। मैकाले की इस शिक्षा प्रणाली में तथाकथित विकास के नाम पर विनाश की धकेलती इस शिक्षा में संस्कारों, धर्म शिक्षा आदि का कोई स्थान नहीं था। मैकाले की यह शिक्षा प्रणाली केवल अंग्रेजों की सेवा करने के लिए क्लर्क और बाबू बनाने के लिए थी। मैकाले की इस शिक्षा प्रणाली में वर्तमान समय में भी हम अच्छे डाक्टर, इंजीनियर, मैनेजर आदि तो बना सकते हैं लेकिन चूंकि इसमें संस्कार देने की कोई व्यवस्था ना होने के कारण इन डाक्टरों, इंजीनियरों और मैनेजरों को हम एक अच्छा संवेदनशील मनुष्य बना पाने में पूरी तरह नाकाम हैं। यदि एक अच्छा डाक्टर एक अच्छा इंसान नहीं है तो ईश्वर का रूप समझा जाने वाला डाक्टर सेवा की भावना से किए जाने वाले कार्य को धन कमाने का व्यवसाय बना लेते हैं और शायद तभी किडनी चोरी, कन्याभ्रूण हत्या, मां के गर्भ में लिंग परीक्षण, दवाइयों और जांच में कमीशनखोरी जैसी घटनायें सामने आती हैं और पूरे चिकित्सक समाज को शर्मिंदगी झेलनी पड़ती है। कमोबेश यही स्थिति इस शिक्षा प्रणाली से उत्पन्न प्रत्येक प्रकार के व्यवसायी की हो जाती है।

इसके समाधान पर चिंतन करते समय हम पाते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत उस समय तीन प्रकार की शिक्षा प्रणालियां हमारे देश में उपलब्ध थी। प्रथम प्राचीनतम गुरूकुलीय शिक्षा व्यवस्था जिसमें शिक्षार्थी ब्रह्मचारी अपने माता-पिता का लाड़ दुलार छोड़कर आचार्य के गुरूकुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करते हुए नया जन्म पाते थे। गुरूकुलीय शिक्षा व्यवस्था में बिना किसी जाति, वर्ण या वर्गभेद के सभी ब्रह्मचारी एक साथ गुरूकुल में स्थापित आचार्य की व्यवस्था के अन्तर्गत रहते हुए जीवन की शिक्षा संस्कार प्राप्त करते थे। यह गुरूकुलीय शिक्षा व्यवस्था पहली बार महाभारत काल में भंग हुई जब राजा धृतराष्ट्र ने पुत्रों के मोह में अंधे होकर गुरू द्रोण को राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत रहकर दुर्योधन आदि समस्त कौरवों को शिक्षा देने के लिए विवश कर दिया। तब शायद पहली बार दुर्योधन आदि को शिक्षा प्राप्त करते समय यह लगा कि हमारा आचार्य तो हमारे पिता की राज्य व्यवस्था के आधीन एक वित्तपोषित कर्मचारी है। अतएव उनके मन में कभी भी आचार्य के प्रति आदर का भाव नहीं रहा और उसी विद्यार्थी काल में आया जिद, उद्दंडता और बड़ों के प्रति अनादर का भाव जो आगे चलकर महाभारत के युद्ध का कारण बना। उस समय इस गुरूकुलीय शिक्षा को स्वामी श्रद्धानंद ने शिक्षा यज्ञ में अपना सर्वस्व आहूत करते हुए सफलता पूर्वक हरिद्वार, इन्द्रप्रस्थ, माटिन्डु आदि स्थानों पर गुरूकुल स्थापित किए और इतिहास साक्षी है कि इन गुरूकुलों ने शिक्षा संस्कार देकर स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणों की आहुति देने वाले कितने क्रान्तिकारी तैयार किए। लेकिन इस गुरूकुलीय शिक्षा प्रणाली को उस समय के नेताओं ने पुरानी धार्मिक कट्टरता वाली और प्रगति विरोधी मानकर खारिज कर दिया।

दूसरी शिक्षा प्रणाली जो शायद समय के अनुकूल थी। महात्मा हंसराज द्वारा नवीन और प्राचीन को जोड़कर बनाई गई एक अनूठे आंदोलन के रूप में चलाई गई दयानन्द एंग्लों वैदिक शिक्षा व्यवस्था जिसे श्वेतवस्त्राधारी जीवन समर्पित करके चलाने वाले तपस्वी महात्मा हंसराज ने स्थापित किया। जिसमें आधुनिकतम शिक्षा के साथ-साथ महर्षि देव दयानन्द द्वारा दिए गए सत्य वैदिक आर्य सिद्धांतों से भी छात्रों का परिचय करवाया जाता था।

परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत शायद मानसिक गुलामी से पूरी तरह ना मुक्त हो पाने के कारण उस समय के नेताओं ने गुलामी की प्रतीक मैकाले की शिक्षा व्यवस्था को अपना लिया। बच्चों के मन कोमल संवेदनशील कच्ची उर्वर मिट्टी की तरह होते हैं। उसमें जैसे बीज बो दिए जायें बड़े होकर वैसे ही बन जाते हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था द्वारा हमने बच्चों को केवल पाश्चात्य भोगवाद की प्रेरणा दी और किसी भी प्रकार के कोई संस्कार नहीं दिए। आज वही पीढ़ी युवा अवस्था में संस्कार विहीन होकर अपराधों की तरफ विशेष रूप से भोगवाद में फंसकर नारी को भोग की वस्तु मानकर बलात्कार सरीखे अत्याचार कर रहे हैं तो हम बड़ी-बड़ी बहस करते हैं और कानून व्यवस्था के लिए एक दूसरे पर दोषारोपण करते हुए राजनीति करते हैं। पर हमारा ध्यान इस बीमारी के मूल यानि दोषी शिक्षा व्यवस्था पर नहीं जाता बल्कि उसका तो हम और अधिक व्यवसायीकरण करते जा रहे हैं। हम आज अपने बच्चों को बड़े-बड़े डोनेशन देकर उच्च शिक्षा इसलिए दिलवाते हैं कि वह बड़ा होकर किसी एम.एन.सी. में मोटा पैकेज लेगा। जब हम भी एक व्यापारी की तरह बच्चों की शिक्षा में व्यवसाय की तरह इनवेस्ट करते हैं और फिर रिटर्न की आशा करते हैं। हमने खुद भी कभी बच्चों को शिक्षा में संस्कार देने का प्रयास नहीं किया। लेकिन अब भी यदि हम जाग जायें और इन सभी बुराइयों की जड़ वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करते हुए यदि नैतिक एवं धर्म शिक्षा को भी शामिल कर ले तो निश्चित रूप से बच्चों को संस्कारवान बना पायेंगे और यही बच्चे कल के अच्छे आदर्श नागरिक बनकर राष्ट्र की मजबूत बुलंद इमारत का आधार बनेंगे और जब हमारे नागरिक संस्कारवान और संभ्रांत होंगे तो अपराध स्वत: कम हो जायेंगे और फिर किसी भी संस्कारवान व्यक्ति से नारी पर अत्याचार स्वत: समाप्त हो जायेंगे। कहा भी जाता है यदि पहले सावधानी बरती जाये और बीमारी पैदा होने वाले कारणों को समाप्त कर दिया जाये तो निश्चित रूप से वह बीमारी नहीं होगी।

पृष्ठ 5 का शेष-सत्यार्थ प्रकार्थ के...

१३. प्रश्न:-जीव स्वतन्त्र, वा परतन्त्र

उत्तर:-अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

१४. प्रश्न:-स्वतन्त्र किसको कहते हैं ?

उत्तर:-जिसके अधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्त:करणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे मृत्यु स्वामी, और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरूषों को मार के भी अपराधी नहीं होते, वैसे ही परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। इस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक अर्थात् सुख-दु:ख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्र विशेष से किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दु:ख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

वेदवाणी

हम इन्द्र के पौरोहित्य में वृत्र का नाश करें

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः।
इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे।। –ऋक्० ८।१२।२२

ऋषिः–**पर्वतः काण्वः**।। देवता–**इन्द्र**।। छन्दः–**उष्णिक्**।।

विनय–देव लोग वृत्रवध के लिए इन्द्र को आगे करते हैं, इन्द्र को पुरोहित बनाते हैं। यह इन्द्र ही है जो वृत्रासुर का वध कर सकता है। जैसे आधिदैविक जगत् में सूर्य-इन्द्र मेघवृत्र का वध किया करता है, जैसे अधिभूत के देव=विद्वान् लोग राजा इन्द्र द्वारा पापियों का विनाश करते हैं, वैसे यहाँ अध्यात्म में आत्मा इन्द्र है जो 'पाप्मा' वृत्र का हनन करता है। पाप हम पर दिन-रात आक्रमण करता रहता है और प्रायः सदा सफल होता रहता है। हम जानते हैं कि यह पाप है, यह नहीं करना चाहिए, तो भी हम रुक नहीं सकते। हम इन्द्रियों को रोकते हैं, मन से विचार करते हैं और बुद्धि से निश्चय करते हैं, पर फिर भी हम रुक नहीं सकते। इसका कारण यह है कि हम आत्मा द्वारा पाप का नाश नहीं करते हैं, हमने आत्मा को पीछे डाल रखा है। देखो, इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से भी परे जो है वह हमारा असली आत्मा है। यदि हम उस आत्मा को आगे ले-आएँ, पुरोहित कर लेवें, इन्द्रियादि देवों को इस आत्मा का अनुयायी, वश्य, पीछे चलने वाला बना लें, तो फिर वृत्रासुर कभी दुबारा हमारे सामने न आ सके, इसका समूल नाश हो जाए. यह काम है, इच्छा है, स्वार्थ है जो सब पापों की जड़, मूल है, पर आत्मप्रकाश हो जाने पर इस स्वार्थ का हममें कुछ काम नहीं रहता, यह विलीन हो जाता है। आत्मराज्य हो जाने पर यह 'काम' इन्द्रियादिकों को अपना अधिष्ठान नहीं बना सकता। तब तो ये हमारे देव आत्मिक ओज के अधिष्ठान बन जाते हैं। वृत्र का अन्धकार हटकर हमारे अन्दर आत्मसूर्य का ओज चमकने लगता है और देखो, आत्मा के इस ओज को प्रकट करने के लिये ये वाणियाँ, वाणी की स्तुतियाँ बहुत सहायक होती हैं। जब हम सुनते हैं, स्वाध्याय करते हैं या स्वयं गाते हैं कि आत्मा की शक्ति इतनी महान् है तो इससे आत्मा का ओज हममें जाग्रत् होता है। वेद-मन्त्र जो इन्द्र की स्तुतियों से भरे पड़े हैं, वे इसीलिए हैं कि हम इस दिव्य वाणी द्वारा आत्मिक ओज को अपने में सम्यक्तया प्रकट कर लें और उस द्वारा महाबली वृत्र का संहार कर दें, अतः आओ, भाइयो ! हम भी इन्द्र को पुरोहित करके अपने में वृत्र का समूल नाश कर लें और इसके लिए अपने में आत्मिक ओज को स्तुति-प्रार्थनाओं द्वारा सम्यक्तया भर लें।

साभार–वैदिक विनय, प्रस्तुति–रणजीत आर्य

जिस घर की स्त्रियां धार्मिक होती हैं वह घर स्वर्ग के समानः आचार्य श्रोत्रीय

आर्य समाज मंदिर शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में साप्ताहिक सत्संग व यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें पंडित शिवा शास्त्री ने पवित्र वेद मंत्रों से यज्ञ सम्पन्न करवाया। इसके उपरान्त आर्य जगत के प्रसिद्ध भजन गायिका सोनू भारती ने भजन प्रस्तुत कर सब को मंत्रमुग्ध कर दिया। इसके बाद आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य वेद प्रकाश जी श्रोत्रीय ने अपने प्रवचन के माध्यम से उपस्थित आर्य जनों को कहा कि जिस घर की स्त्रियां धार्मिक होती हैं वह घर स्वर्ग के समान होता है और जिस घर की स्त्रियां संस्कारवान नहीं होती वह घर नरक के समान है। क्योंकि यदि बगीचे में हमें सुन्दर फलों को प्राप्त करना है तो उस बाग के माली का सहयोग होना बहुत जरूरी है। क्योंकि नारी ही घर की शोभा है। यदि हमारी शोभा में ही धार्मिकता का वास नहीं होगा तो अन्यत्र में धार्मिकता कहां से आएगी। यदि हम धार्मिक हो गये तो ही हमारा इस संसार में आना सार्थक है। आर्य समाज के मंत्री श्री रणजीत आर्य ने सभी का धन्यवाद करते हुये कहा कि जो यज्ञ वेदी पर उपस्थित होते हैं वह भाग्यशाली होते हैं। इससे पहले यज्ञ में स्वर्ण शर्मा परिवार यजमान के रूप में शामिल हुआ। इस मौके पर सुभाष आर्य, इन्दु आर्य, भूपेन्द्र उपाध्याय, अश्विनी डोगरा, चौधरी हरी चंद, ओम प्रकाश मेहता, जगदीश शर्मा, राकेश बावा, सरिता बावा, सुभाष भगत, रमेश मुटरेजा, राजीव शर्मा, हर्ष लखनपाल, सुरेश ठाकुर, हरविन्द्र सिंह बेदी, रविन्द्र कौर, मोहन लाल, मनु आर्य, दिव्या आर्या, नरेश कुमार, रविन्द्र आर्य, तिलक राज, विनोद तिवारी, संगीता तिवारी, संगीता मल्होत्रा, राजेश कपूर, केदारनाथ शर्मा, लवलीन शर्मा, अनु आर्य, पूनम शर्मा, स्नेह लता, रैना, सुनयना, सुदर्शन आर्य, शिखा आर्य, अनिल मिश्रा, अर्चना मिश्रा, बंटी शर्मा, मनप्रीत शर्मा राकेश मिश्रा, दीपक अग्रवाल, कांता रानी, राकेश वर्मा, संतोष ठाकुर सहित कई आर्य जन पधारे हुये थे।

गुरूकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

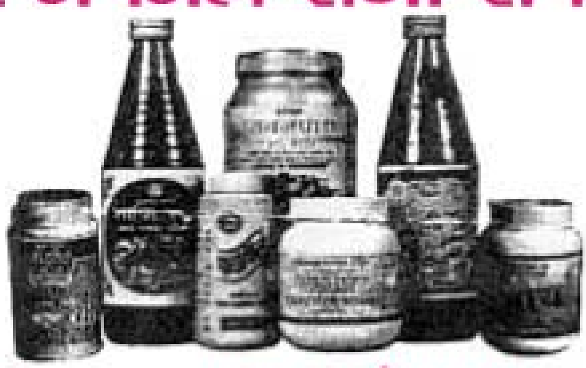

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताजगी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, जिला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।